संगीत का सौन्दर्य विज्ञान भाव एवं स्वरों के संदर्भ में

डॉ. शुचि गुप्ता
एसिस्टेंट प्रोफेसर,
के.एल.पी. कॉलेज,
रेवाड़ी (हरियाणा)

संगीत कला के संदर्भ में सौन्दर्य अनुभूति एक आत्मिक विषय है। परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को जन्म से ही सौन्दर्यबोध करने की विशेष दृष्टि प्रदान की है, इसी के परिणाम स्वरूप वह सर्व प्रथम अपने चारों ओर बिखरे प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हुआ और प्रेरित होकर वह निरन्तर सौन्दर्यपरक तत्वों (सौन्दर्य बोध करवाने वाली) की खोज करता रहा। प्रकृति में झर–झर बहते झरने, कल–कल करती नदियाँ, सर–सर बहती पवन, रिमझिम करती बारिश की बूंदो, पक्षियों के करलव जैसे शब्दविहीन प्राकृतिक संगीत से प्रेरणा पाकर ही मनुष्य ने संगीत कला को और अधिक विकसित किया। भिन्न ऋतुओं के आगमन के परिणामस्वरूप प्रकृति के बदलते हुए रंग रूप ने मनुष्य को आकर्षित किया। उसी अन्तर्निहित सौन्दर्य की दृष्टि से इसकी परख की और उसे शब्द, लय एवं ताल में पिरोकर अभिव्यक्त किया। यह तो मनुष्य की सहज अनुभूति थी जिसके मूल में सौन्दर्यपरक दृष्टि एवं अनुभूति दोनों की समान भागीदारी थी। बदलते समय के साथ अनेको भिन्न–2 प्रकार की गायन शैलियों का विकास होना इस तथ्य का प्रमाण है कि जब तक मनुष्य में सौन्दर्यपरक दृष्टि रहेगी संगीत में नए–2 परिवर्तन एवं प्रयोग चिरकालीन रहेंगे। विद्वानों के अनुसार सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होने का कारण ऐन्द्रीय संवेदना ही है। संगीत कला के माध्यम से ही ऐन्द्रिय संवेदना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हो पाना संभव है। अतः इस दृष्टि से संगीत कला एवं सौन्दर्य दोनो ही एक दूसरो में समाहित होते हुए प्रतीत होते है। इस संदर्भ में हींगेल ने अपनी पुस्तक 'फिलासफी आफ फाईन आर्ट' में सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है और स्पष्ट रूप से कहे तो यह इसका क्षेत्र कला का या कहना चाहिए कि ललित कला का क्षेत्र है।''1

हींगेल के कथनानुसार ललित कला ही सौन्दर्य की व्याख्या करने का सर्वोत्तम माध्यम है। ललित कलाओं के अतिरिक्त किसी भी साधारण कार्य को अत्यन्त सुरूचिपूर्ण एवं कलात्मक तरीके से करने पर वह कार्य न रह कर कला बन जाता है क्योंकि कर्ता की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ देखने वालो की ऐन्द्रिया संवेदना एकाकार होकर कला का रूप ले लेती है। फिर चाहे वह ललित कला हो अथवा उपयोगी कला शब्द स्वर एवं लय के मजबूत आधार स्तंभो पर टिकी हुई संगीत कला सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति करने में सक्षम है यही कारण है कि संगीत कला के अन्तर्गत 'रस' का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। संगीत में प्रयोग होने वाले प्रत्येक तत्व विशेष के माध्यम से भिन्न–2 प्रकार से रसोत्पत्ति होती है। जिस स्थान पर ये सभी तत्व एकाकार हो जाते है वह चर्मोत्कर्ष की स्थिति कहलाती है। यह स्थिति ठीक वैसी है जैसे कोई सिद्ध पुरूष साधना में लीन हो कर परम ब्रह्मा को प्राप्त कर लेते है। संगीत कला के संदर्भ में रसोत्पत्ति के अनेको कारक माने गए है। परन्तु निर्धारित विषय सीमा को ध्यान में रखते हुए भाव एवं स्वर इन दो कारको पर विशेष दृष्टिपात करने की आवश्यकता है कि कैसे भाव रूपी मानसिक स्थिति संगीत जैसी विस्तृत कला को आनन्द की रूपी नाव पर सवार करके परम आनन्द की प्राप्ति करवाती है। ठीक इसी प्रकार भाव सप्त स्वरो में गूथ कर कैसे अपना स्वतन्त्र प्रभाव हमारे मन मस्तिष्क पर डालते है। इसी का संक्षेप में विवरण विषय को समझाने हेतू प्रस्तुत किया गया है।

भावः– भाव वह मनोवैज्ञानिक दशा है जो हम परिस्थिति विशेष में अनुभव करते है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव चेहरे पर झलकने लगता है। यह वह सांझी अनुभूति होती है जिसे कलाकार एवं दर्शक दोनो एकसाथ अनुभव करते है जब यह स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब यह 'रस' कहलाती है। संगीत कला में भावों की अभिव्यक्ति और भावों की उत्पत्ति दो अलग–2 विषय है जिसमें एक का सम्बन्ध कलाकार से है तो दूसरे का सम्बन्ध श्रवणकर्ता से है। यद्यपि यह दोनो क्रियाएं एक दूसरे पर निर्भर करती है। परन्तु अहम् भूमिका कलाकार की ही रहती है। क्योंकि यदि कलाकार शब्द स्वर, लय, ताल आदि तत्वों में से किसी एक तत्व की भी न्यूनता या अधिकता कर दे तो वह अमुक भाव की रसोत्पत्ति करने में विफल हो सकता है इसके सामानान्तर यदि श्रोता कलाकार की कला को समझने में विफल रहे तो भी रसोत्पत्ति अर्थहीन हो जाती है। मंच प्रदर्शन के दौरान भाव अथवा रसोतपत्ति की प्रक्रिया चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ती है। सर्व प्रथम कलाकार अपने पूर्व निर्धारित उददेश्य की प्राप्ति हेतू उसी भाव (जिसे वह प्रकट करना चाहता है) के अनुरूप शब्दो का (गीत के बोल, बन्दिश) का चयन करता है। शब्दों से पदो की रचना होती है तत्पश्चात् अनुकूल स्वर लय, ताल के साथ शब्दों की संगीतमय प्रस्तुति वांछित रसोत्पत्ति का कारक

"योयम् ध्वनि विशेषास्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रंजको जन चितानाम् स कथितौ राग बुधैः।।"

बनती है जिसे संगीत में राग की संज्ञा दी गई है। राग की व्याख्या ग्रन्थों में निम्न प्रकार से प्रस्तुत की गई है यथा–

'अर्थात् अनुकूल स्वर एवं वर्णों से विभूषित ध्वनि की वह विशेष रचना जो सुनने वाले के चित्त का रंजन करे वह राग कहलाती है।"2

राग का अर्थ ही रंजन करना है जिसके मूल में पद (बोल) की भांति है। पद एक कल्पना, सोच अथवा विचार है जिसे कलाकार संगीत रूपी परिधान में लपेटकर जब प्रस्तुत करता है तो प्रस्तुतकर्ता के भावों का सुनने वाले के भावो से एकाकार हो जाता है। परिणामस्वरूप श्रोता भावशून्य हो कर केवल उस भाव को ही आत्मसात करता है जो कलाकार अभिव्यक्त करता है। दोनों भावविभोर होकर संगीत कला की उस शक्ति का अनुभव करते है जिसे नादब्रह्म की संज्ञा दी है। वही 'रस' है। साहित्य में नवरसों की व्याख्या मनुष्य की मनोस्थिति प्रदर्शित करने हेतू की गई है। वीरस, शान्त रस, करूण रस, रौद्र रस, हास्य रस, विभित्स रस, भयानक रस, अदभुत रस, श्रृंगार रस आदि ललित कलाओं में संगीत कला की एक ऐसी कला है जिसके हर एक तत्व में परिस्थिति अनुकूल रसोतपत्ति करने की क्षमता विद्यमान हैं जिसकी अनुभूति ज्ञानी पण्डित से लेकर अज्ञान व्यक्ति भी एक समान रूप से कर पाते है। हमारे प्राचीन संगीतज्ञो ने भिन्न–2 रागों से भिन्न–2 रसों की उत्पत्ति एवं अनुभूति का विधान निश्चित किया है। उदाहरण के लिए राग ललित शान्त रस, राग रामकली श्रृंगार रस, राग शंकरा वीर रस, राग भैरव भक्ति रस, कल्याण के प्रकार शान्त व भक्ति रस के धोतक है। राग केदार, कामोद एवं छायानट खमाज, जयजयवंती एवं देस राग से श्रृंगार रस का द्योतक है। इसके अतिरिक्त जिन रागों का चलन मन्द मध्य अथवा तार सप्तक में है वे भी विभिन्न प्रकार की रसोतपत्ति करते है जैसे मध्य एवं तार सप्तक के चलन वाले राग वीर रसोत्पादक है मन्द एवं मध्य सप्तक के चलन वाले राग शान्त एवं श्रृंगार रस के द्योतक तथा तीनो सप्तको में चलने वाले रागो में भी शांत एवं श्रृंगार रस की प्रधानता होने की व्याख्या ग्रन्थो में मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत में भावानुभूति हेतू संगीत का मर्मज्ञ होना इतना आवश्यक नही जितना कि उस भाव विशेष की अनुभव करने हेतू कोमल भावनाओं का होना आवश्यक है।

स्वरः– संगीतमय भावाभिव्यक्ति अनुकूल स्वरों के माध्यम से ही संभव है। नियमित आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि स्वर का रूप धारण कर लेती है। विशेष भावो की अभिव्यक्ति विशेष स्वरों के माध्यम से करने पर उस भाव विशेष से सम्बन्धित रस का संचार होता है। स्वर का मूल उदगम् स्थल कंठ है परन्तु शरीर के अन्य अंगों की भी नादोत्पत्ति में अहम् भूमिका होती है यथा कंठ, नाभि, हृदय, मुख आदि इस हेतू वेदो में मनुष्य शरीर को 'गात्रवीणा' कहा गया है। इस

'आत्मा विविक्षमाणों ऽयं मनः प्रेरयते मनः।
देहस्थं बहिनमाहन्ति स प्रेरयति मारूतम्।
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सो ऽथं मादूर्ध्वपथे चरन्।
नाभिह्यत्कंठमूर्धास्येष्वाविभवियति ध्वनिम्।।"

संदभ में संगीत रत्नाकर ग्रन्थ का यह श्लोक विषय संगत प्रतीत होता है।

"अर्थात् जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तब वह मन को प्रेरित करता है। मन देहस्थ अग्नि को प्रेरणा देता है, अग्नि वायु का चालन करती है, तब ब्रह्मग्रन्थिस्थित वायु क्रमशः ऊपर चढती हुई नाभि, कंठ, हृदय, मूर्धा और मुख इन स्थानो से पांच प्रकार के नांद (ध्वनि) उत्पन्न करती है। इन नादो का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरो की सहायता से भाव एवं रस की उत्पत्ति होती है।"3

निम्न श्लोक से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि संगीत के स्वर मनुष्य की अर्न्त आत्मा की वाणी होते है। मनुष्य का अन्तःकरण जितना शुद्ध होगा कंठ से उतना ही मधुर स्वर उत्पन्न होगा। माँ सरस्वती की कृपा से कंठ से मुखरित भावानुकुल सरल एवं स्पष्ट स्वरों की रस उत्पादन क्षमता अत्याधिक होती है। इसी तथ्य के मद्देनजर यह कथन वांछनीय है कि संगीत में प्रत्येक स्वर की प्रकृति भिन्न–2 है और अपनी प्रकृतिनुसार रसोत्पत्ति करने में सक्षम है। महर्षि भरत ने श्रृंगार, वीर, करूण और शान्त रसों को सप्त स्वरों में समाहित करते हुए लिखा है कि:–

"स री वीरेद्भुते रौदे धा वीभत्से भयानके।
कार्यौ ग नी तु करूणा हास्य श्रृंगारयोर्मपौ।।"

"अर्थात् स रे वीर, रौद्र तथा अद्भुद रसो का पोषक है। ध वीभत्स तथा भयानक रसो के पोषक है। ग, नि करूण रस के पोषक है। म, प हास्य एवं श्रृंगार रसो के पोषक है।"4

रागो में प्रयुक्त होने वाले 5, 6 अथवा 7 स्वर अपने सहयोगी स्वरो के साथ मिलकर ही कविता अथवा गीत की पंक्ति के शब्दो के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर भातखण्डे जी ने ग, नि कोमल स्वरो वाले रागो से 'वीर रस', रे–ध तीव्र स्वर वाले रागो से 'श्रृंगार रस' रे–ध कोमल स्वर वाले रागो से शान्त एवं करूण रस की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थापित किया। इसके अतिरिक्त प्रस्तुतिकरण के आधार पर 'राग भैरव' भक्ति रस प्रधान माना गया, क्योंकि इसमें पाई जाने वाली बन्दिशों का विषय अधिकतर ईशवंदना से सम्बन्धित है। राग केदार , कामोद और छायानट आदि की बन्दिशों ज्यादातर श्रृंगार रस प्रधान है। स्वरो के माध्यम से रसोत्पत्ति के सजीव उदाहरण अक्सर देखे जा सकते है कि दर्शक एवं श्रोताओ के मुखमण्डल पर लज्जा के भाव, आंखो से बहती अविरल अश्रुधारा, शरीर में उत्तेजना के प्रसार के रूप में देखे जा सकते है। यह वास्तव में स्वरों का प्रभाव होता है जो संगीतकार कविता की पंक्तियों को अनुकूल स्वरो से पिरोकर जब प्रस्तुत करता है तो वह संगीत कला द्वारा लोगो को नादब्रह्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करवा पाने में सफल हो जाता है।

निष्कर्षः–

संगीत के सौन्दर्य तत्वो के संदर्भ में भाव अथवा रस विषय एवं स्वरो के विषय पर व्याख्या करने पर यह निष्कर्ष निकल कर आता है कि संगीत सम्पूर्ण कला है जिसमें पद, स्वर, लय, ताल, प्रस्तुतिकरण, भावनाएं, संवेग आदि का यथास्थान प्रयोग हो तो वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकती है। इन

सभी विषयो में सही अनुपात स्थापित कर पाना ही कला का ज्ञान प्राप्त करना कहलाता है। संगीत कला का विस्तार आदि से अन्त तक व्याप्त है। यह कला समुद्र मंथन के समान है जिससे कलाकार अपने श्रम से मंथन करके अमृत तत्व की प्राप्ति करता है और इसका रसस्वादन वह जिसको भी करवाता है वह भी सहज ही उस अमर तत्व का भागीदार बन जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. फिलासफी ऑफ फाईन आर्ट–हीगेल, पृष्ठ–1–2
2. राग परिचय–हरीश चन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ 132
3. संगीत विशारद–वसन्त, पृष्ठ 550
4. संगीत विशारद–वसन्त, पृष्ठ 576